दर्शन-वीर्य और सुख रूप अन्तरंग लक्ष्मी एवं प्रातिहार्य-विभूति तथा समवसरण रूप बाह्य लक्ष्मी से युक्त होते हैं। ये वीतरागी, सर्वज्ञ, सर्वहितैषी, मोक्षमार्गोपदेष्टा तथा परमात्मा होते हैं। मपु० १.१२१, २४.१७५, ३३.१४-१५, ९३, ४०.४१-४३, हपु० १०.११ दे० अर्हन्त

(४) सौधर्मेन्द्र द्वारा स्तुत वृषभदेव का एक नाम। मपु० २५.२०९

आप्तता—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्म के विनाश से उत्पन्न अर्हन्त-अवस्था। मपु० ४८.४२

आप्ताभास—आप्त से इतर मिथ्या देव। ऐसे देव आप्तंमन्य (अपने को आप्त मानने के अभिमान में चूर) होते हैं। मपु० २४.१२५, ३९.१३, ४२.८१

आप्य—जलकायिक जीव। ये तृण के अग्रभाग पर रखी जल की बूंद के समान होते हैं। हपु० १८.७०

आभियोग्य—सामानिक आदि दस प्रकार के देवों में एक प्रकार के देव। ये दासों के समान शेष नौ प्रकार के देवों का सेवाकर्म करते हैं। ये देव-सभा में बैठने योग्य नहीं होते। मपु० २२.२९, हपु० ३.१३६, वीवच० १४.४०

आभीर—इन्द्र द्वारा निर्मित एक देश। मपु० १६.१४१-१४८, १५४, हपु० ११.६६, ५०.७२

आभ्यन्तर तप—तप के दो भेदों में प्रथम भेद। इसके छः भेद हैं—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान। इनके द्वारा मन का नियमन किया जाता है। मपु० २०.१८९-२०३, हपु० ६४.२०,२८

आभ्यन्तर परिग्रह—मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय इस तरह चौदह प्रकार का परिग्रह। हपु० २.२१

आम्नाय—स्वाध्याय तप का चौथा भेद—पाठ का बार-बार अभ्यास करना। दे० स्वाध्याय

आम्र—(१) भरतक्षेत्र का एक लोकप्रिय फल। यह भरतेश द्वारा ऋषभदेव की पूजा में चढ़ाया जानेवाला एक फल है। मपु० १७.२५२

(२) समवसरण का एक चैत्यवृक्ष। मपु० २२.१९९-२०४

आम्रमंजरी—(१) विजयार्ध पर्वत की दक्षिणश्रेणी के गगनवल्लभ नगर के निवासी वैश्रवण सेठ की भार्या। मपु० ७५.३४८

(२) भ्रमर की प्रिय आम्र की बौर। मपु० ५.२८८

आम्रवन—(१) समवसरण-भूमि का चतुर्थ वन। मपु० २२.१६३,१८१

(२) पुण्डरीकिणी नगरी का एक उपवन। एक हजार राजाओं सहित वज्रसेन इसी उपवन में दीक्षित हुए थे। मपु० ११.४८

आमर्श—इस नाम की एक ऋद्धि। इससे रोग नष्ट होते हैं। मपु० २.७१

आयुकर्म—(१) आठ प्रकार के कर्मों में पांचवें प्रकार का कर्म। यह सुदृढ़ बेड़ी के समान जीव को किसी एक पर्याय में रोके रहता है। यह जीवों को मन चाहे स्थान पर नहीं जाने देता। यह दुःख, शोक आदि अशुभ वेदनाओं का स्थान है। इसकी उत्कृष्ट स्थिति तेंतीस सागर प्रमाण तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और मध्यम स्थिति विविध रूप की होती है। हपु० ३.९६, ५८.२१५-२१८, वीवच० १६.१५१, १५८, १६० उत्कृष्ट रूप से पृथिवीकायिक जीवों की आयु बाईस हजार वर्ष, जलकायिक की उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष, वायुकायिक की तीन हजार वर्ष, तेजस्कायिक की तीन दिन रात, वनस्पतिकायिक की दस हजार वर्ष, दो इन्द्रिय की बारह वर्ष, तीन इन्द्रिय की उनचास दिन, चार इन्द्रिय की छः मास, पक्षी की बहत्तर हजार वर्ष, साँप की बयालीस हजार वर्ष, छाती से सरकने वाले जीवों की नौ पूर्वांग, मनुष्य तथा मत्स्य जीवों की एक करोड़ वर्ष की होती है। हपु० १८.५४-६९

आयुध—सैन्य संबंधी शस्त्रास्त्र। मपु० ४५.३

आयुधपाल—आयुधशाला का अधिकारी। मपु० २४.३

आयुधालय—सैन्य शस्त्रास्त्रों के रखने का स्थान। राजा वज्रदन्त का चक्र और भरत चक्रवर्ती के चार रत्न—चक्र, दण्ड, असि और छत्र आयुधालय में ही प्रकट हुए थे। मपु० ६.१०२, ३७.८५

आयुर्वेद—चिकित्सा-विज्ञान। वृषभदेव ने बाहुबली को आयुर्वेद विज्ञान की शिक्षा दी थी। भस्म, आसव, और अरिष्ट की विधियाँ भी इन्हें बतायी थीं। मपु० ९.३७, १६.१२२

आर—चौथी पृथिवी पंकप्रभा के सात प्रस्तारों के सात इन्द्रक बिलों में प्रथम इन्द्रक बिल। इस बिल की चारों दिशाओं में चौसठ और विदिशाओं में साठ श्रेणिबद्ध बिल हैं। हपु० ४.८१, १२९

आरक्षी—रक्षा करनेवाला राजकीय अधिकारी-कोतवाल। मपु० ४६.२९१

आरट्ट—भरतक्षेत्र का एक देश। यहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। मपु० १६.१४१-१४८, १५६, ३०.१०७

आरण—(१) अच्युत स्वर्ग के तीन इन्द्रक विमानों में दूसरा विमान। हपु० ६.५१

(२) ऊर्ध्वलोक में स्थित १६ स्वर्गों में पन्द्रहवां स्वर्ग (कल्प)। राजा पद्मगुल्म को इस स्वर्ग में बाईस सागर की आयु मिली थी, शरीर तीन हाथ ऊँचा था, शुक्ल लेश्या थी, ग्यारह मास में वह श्वास लेता था, बाईस हजार वर्ष में मानसिक आहार लेता था, मानसिक प्रवीचार से युक्त प्राकाम्य आदि आठ गुणों का धारक था, अवधिज्ञानी था, छठे नरक तक की बात अवधिज्ञान से जानता था और उसको कोई विकार नहीं था। मपु० ५६.२०-२२, पपु० १०५.१६६-१६९, हपु० ४.१६, ६.३८

आरण्य—वनों के ऐसे देश जिनमें अरण्य जाति के लोग रहते थे। ये लोग धनुर्धर होते थे। मपु० १६.१६१

आरण्यक—वैदिक साहित्य का उपनिषदों से पूर्व का एक अंश। क्षीरकदम्बक ने इसी वन में नारद आदि अपने शिष्यों को पढ़ाया था। पपु० ११.१५, हपु० १७.४०

आरम्भ—(१) आस्रव के तीन भेदों में तीसरा भेद। अपने या दूसरों के कार्यों में रुचि रख कर करना। इसके छत्तीस भेद होते हैं। हपु० ५८.७९, ८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org